# अज्ञानता राग–द्वेष

**प्रो. (डॉ.) सोहन राज तातेड़,**
**पूर्व कुलपति, सिंघानिया विश्वविद्यालय, राजस्थान**

आत्मा ही ज्ञान है और ज्ञान ही आत्मा है। उपयोग ज्ञान और दर्शन है। प्रथमदृष्ट्या किसी को देखना साधारण दर्शन कहलाता है। विशेष रूप से देखना ज्ञान कहलाता है। मैं कौन हूं? इसका भी ज्ञान हमें नहीं रहता। हम संसार के बारे में अधिक जानते हैं किन्तु अपने बारे में नहीं जानते। सबसे बड़ा ज्ञान अपने अस्तित्व की जानकारी करना है। मनुष्य मैं और मेरे तक ही सीमित रहकर अहंकार के कारण कर्ता भाव का बंध कर लेता है। कर्ता भाव स्वयं बड़ा अज्ञान है। यह हमें चारों तरफ घूमाता रहता है। राग–द्वेष सबसे बड़ा अज्ञान है। सम्यक्त्व ज्ञान है। राग–द्वेष अज्ञान है। समता स्वभाव पैदा करती है। स्वभाव में रमण करना पुरुषार्थ है। शरीर नाशवान है, आत्मा शाश्वत् है। आत्मा को ज्ञाता द्रष्टा मानना सम्यक् दर्शन है।

जब हम राग–द्वेष मुक्त होकर चिंतन करते हैं तो आत्मा का चिंतन होता है। शरीर में रहते हुए शरीर का ज्ञान न होना आत्मचिंतन नहीं कहा जा सकता। वर्तमान जीवन कर्मों के भुगतान के लिए है। कर्मों का फल भोगकर आत्मा मुक्त होता है। जीवन मरण के चक्र को बढ़ाने वाला राग–द्वेष हैं। राग का अर्थ है प्रियता और आसक्त होना। माया और मोह राग हैं। इन्द्रिय सुख, परिवार सुख, धन दौलत में लगना राग है। द्वेष का अर्थ है घृणा करना, प्रतिस्पर्द्धा करना, जलन करना। राग–द्वेष आंतरिक बुराई है। रोग–द्वेष जीवन को मोह में डाल देते हैं। क्रोध, मान, माया, लोभ कषाय हैं। जैसे दावानल में सम्पूर्ण जंगल जलकर राख हो जाता है तब दावानल शान्त होता है। उसी प्रकार क्रोध भी दावानल के समान है और जलाकर नष्ट कर देने के बाद शान्त होता है।

क्रोध के कारण वातावरण दूषित हो जाता है। पति–पत्नी के बीच टकराव, बच्चों के प्रति टकराव, किसी के प्रति टकराव हो सकता है। यह भयंकर दावानल है। क्रोध दूसरों का नुकसान करें या न करें किन्तु क्रोध करने वाले को जला ही डालता है। इससे अनेक बिमारियां आती हैं जो मनुष्य को आंतरिक रूप से कमजोर कर देती है। क्रोध को जीतने के

लिए क्षमा भाव का विकास आवश्यक है। समस्या का समाधान भी आवश्यक होता है। छोटे व्यक्ति यदि कोई गलती करे तो उन्हें क्षमादान कर देना चाहिए।

अहंकार नकारात्मकता को जन्म देता है। मैं ही सब कुछ जानता हूॅं, मेरे से बड़ा कोई नहीं है, मुझसे अधिक धनवान कोई नहीं है यह भाव अहंकार का है। अहंकार व्यक्ति को पतन की और ले जाता है। अहंकार को समता, सरलता, मृदुता से जीतना चाहिए। जीवन ज्ञान महत्वपूर्ण चीज है। किन्तु उससे भी अधिक महत्वपूर्ण है आचरण। ज्ञान को जीवन में ढालिए तभी ज्ञान का महत्व है। ज्ञान दूसरों को बांटने में बढ़ता है, ज्ञान एक धन है। भारत की अनेक विद्याएं ऐसे ही नष्ट हो गयी क्योंकि एक पीढ़ी ने दूसरी पीढ़ी को ज्ञान नहीं दिया। यदि एक पीढ़ी दूसरी पीढ़ी को ज्ञान का रूपान्तरण न करें तो ज्ञान संकुचित होकर नष्ट हो जाता है। ज्ञान बांटने से ही बढ़ता है। माया मानव को दुर्गुण की और ले जाती हैं, कथनी करनी  में अन्तर माया का एक रूप है। माया एक मीठी छुरी की तरह है। जो दोनों ओर काटती हैं। किसी को धोख नहीं देना चाहिए। छलकपट नहीं करना चाहिए।

कबीरदासजी ने कहा है कि – **माया महा ठगिन हम जानी**–अर्थात हे माया तूं बहुत बड़ी ठगिनी है। मीठी बोली के द्वारा दूसरों को धोखा देकर के तूं ढग लेती है। लोभ एक ऐसी प्रवृति है जिससे आसक्ति बढ़ती है। विषयी व्यक्ति लोभी होता है । लोभी व्यक्ति इतना आसक्त हो जाता है कि वह अपने जीवन को भी नष्ट कर देता है। पॉच इन्द्रियों के विषय जीवन को इतना भोग विलासी बना देते हैं कि सत्य का स्वरूप ही दिखाई नहीं देता। किसी भी वस्तु का त्यागपूर्वक उपभोग करना चाहिए। गीता में त्याग की शिक्षा दी गई है। मोह का अर्थ है अविद्या, अज्ञान, क्रोध, मान, माया, लोभ मोह का परिवार बड़ा लम्बा है। जितनी बुराईयां हैं वह सब मोह रूपी वटवृक्ष की शाखाएं हैं।

भारतीय संस्कृति में अनेकता में एकता को महत्व दिया गया है। सभी संस्कृतियों में मोह को अज्ञान कहा गया है। दुःख का कारण मोह है। मोह के कारण व्यक्ति गलत कार्य करता है। निर्मोही अवस्था अच्छाई की अवस्था है। इसलिए बुद्धि को मोह से मुक्त होना चाहिए। शरीर में पांच कर्मेन्द्रियां, पांच ज्ञानेन्द्रियां और मन सदैव सक्रिय रहता है। इन्द्रियां बाह्य विषयों को ग्रहण कर मन को प्रदान करती हैं। बुद्धि का कार्य है निर्णय करना। कुबुद्धि और सुबुद्धि

अपना कार्य करती रहती हैं। सुबुद्धि से अच्छा कार्य और कुबुद्धि से बुरा कार्य होता है। कुबुद्धि बुराई है। राग–द्वेष से किया गया कार्य स्वार्थ से प्रेरित होता है।

प्रज्ञा निर्मोही होती हैं। प्रज्ञा आत्मा का प्रतिनिधित्व करती है। प्रज्ञा जागृत रहती है तो बुद्धि मोह युक्त नहीं होती। प्रज्ञा तीसरा नेत्र है। तीसरे नेत्र के उद्घाटित हो जाने पर दृष्टि में समभाव आ जाता है। गीता में स्थितप्रज्ञ का विवेचन किया गया है। स्थितप्रज्ञ की अवस्था समता की अवस्था है। इस अवस्था में मन से राग–द्वेष समाप्त हो जाता है। मानव जैसा बीज बोता है वैसे ही उसको फल प्राप्त होता है। बीज बोने में हम स्वतन्त्र हैं किन्तु फल में परतन्त्र है। जैसा बीज वैसा फल। कारण के बिना कार्य नहीं होता। यदि कारण अच्छा है तो कार्य भी अच्छा होगा। जैसा पुरुषार्थ किया जायेगा परिणाम भी वैसा ही होगा।